इस संदर्भ में कई सवाल उठ सकते हैं कि किसी विषय को पाठ्यक्रम का अंग बनाने की क्या-क्या शर्तें होती हैं और ज्योतिष या कोई अन्य विषय उन्हें पूरी करता है या नहीं। वैसे इस सम्बंध में रुचि रखने वाले लोग उस दौर के इतिहास पर गौर कर सकते हैं जब खुद विज्ञान पाठ्यक्रम में शामिल होने का संघर्ष कर रहा था।

ज्योतिष एक विज्ञान कैसे हो सकता है?

डॉ. सुशील जोशी

आजकल यह गरमागरम बहस का विषय है कि ज्योतिष विज्ञान है या नहीं। बहस इस संदर्भ में शुरू हुई है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने विश्वविद्यालयों से कहा है कि वे ज्योतिष के पाठ्यक्रम शुरू करें। गौरतलब है कि यहां बात फलित ज्योतिष की हो रही है।

इस संदर्भ में कई सवाल उठ सकते हैं कि किसी विषय को पाठ्यक्रम का अंग बनाने की क्या-क्या शर्तें होती हैं और ज्योतिष या कोई अन्य विषय उन्हें पूरी करता है या नहीं। वैसे इस सम्बंध में रुचि रखने वाले लोग उस दौर के इतिहास पर गौर कर सकते हैं जब खुद विज्ञान पाठ्यक्रम में शामिल होने का संघर्ष कर रहा था।

बहरहाल, इस लेख का दायरा थोड़ा सीमित है। हम यहां सिर्फ़ इस बात पर विचार करेंगे कि क्या ज्योतिष को एक विज्ञान कहा जा सकता है।

बी.ए. ज्योतिष

बात को शुरू करने के लिए यह प्रश्न काफी रोचक रहेगा - जब कुछ छात्र ज्योतिष विषय के साथ बी.ए. या एम.ए. करके निकलेंगे तो उनके सामने क्या स्थिति होगी? उम्मीद की जानी चाहिए कि वे ग्रह-नक्षत्रों की गणनाएं करने में पारंगत होंगे। शायद वे पंचांग देखकर बता पाएंगे कि किस समय विशेष पर ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति क्या थी अथवा क्या होगी। परंतु क्या वे सूर्य, चंद्रमा, राहु, केतु को भी ग्रह मानेंगे? आज हम जानते हैं कि सूर्य एक तारा है और चंद्रमा एक उपग्रह है, जबकि राहु-केतु का कोई भौतिक अस्तित्व ही नहीं है। तब क्या वे राहु-केतु के प्रभाव की गणना करते रहेंगे जबकि उनका कोई अस्तित्व ही नहीं है? संक्षेप में सवाल यह है कि वे ग्रह-नक्षत्रों सम्बंधी आधुनिक ज्ञान का ख्याल करेंगे या नहीं। यदि करेंगे तो उनकी ज्योतिष सम्बंधी मान्यताओं का क्या होगा और यदि नहीं करेंगे तो वास्तविकता से उनके ज्ञान का अथवा उनकी भविष्यवाणियों का क्या सम्बंध रह जाएगा?

फिलहाल हम यह सवाल नहीं उठा रहे हैं कि फलित ज्योतिष की इस मान्यता में कितना दम है कि ग्रह-नक्षत्रों की स्थिति मानव के चरित्र व उसके भविष्य का निर्धारण करती है। यहां तो सवाल मात्र इतना है कि क्या ज्योतिष समय के साथ बढ़ते ज्ञान के साथ तालमेल रख पाया है। क्या वह नए-नए अवलोकनों से प्राप्त जानकारी के साथ अपने सिद्धांतों को जोड़े रख पाया है? आइए कुछ उदाहरणों से इस बात को समझने का प्रयास करें।

नए ग्रह

यदि यह मान लिया जाए कि ग्रहों की स्थिति के आधार पर 'जातक' का भविष्य वगैरह बताया जा सकता है तो कई सवाल उठते हैं। जैसे आज भी ज्योतिष लोग जो जन्म कुण्डली बनाते हैं उनमें आपको राहु और केतु नज़र आएंगे, जबकि उनका अस्तित्व न होने की बात प्रमाणित हो चुकी है। दूसरी ओर आपको इन जन्म कुण्डलियों में युरेनस, नेप्चून और प्लूटो का नामो निशान नहीं दिखेगा। पिछले वर्षों में ये तीन ग्रह खोजे गए हैं। कहने का मतलब यह है कि विज्ञान की परंपरा के विपरीत ज्योतिष ने कभी भी बढ़ते ज्ञान के साथ कदम मिलाकर चलने की कोशिश ही नहीं की। विज्ञान ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है जब नए-नए अलोकनों के प्रकाश में पूर्व स्थापित सिद्धांतों का स्थान नए सिद्धांतों ने लिया। विज्ञान में यह प्रगति का द्योतक माना जाता है।

ग्रहण की छाया

सूर्य और चन्द्र ग्रहण सदैव से मानव की रुचि व जिज्ञासा के विषय रहे हैं। भारत में इनकी व्याख्या के लिए राहु और केतु नामक दैत्यों की कल्पना की गई थी। इन दोनों ग्रहणों को मानव के लिए हानिकारक बताया जाता था। उसी को आजकल कुछ लोग विकिरण आदि की भाषा में कहने लगे हैं। वे इस मुगालते में हैं कि इस भाषा का प्रयोग करने भर से कोई भी बात वैज्ञानिक हो जाती है।

बहरहाल, आप कल्पना कर सकते हैं कि यदि कोई व्यक्ति इन घटनाओं की भविष्यवाणी कर सके तो वह उस समाज पर छा जाएगा। मगर यदि वह यह भी बता दे कि ये ग्रहण मात्र छायाओं का खेल है, राक्षस-वाक्षस कुछ नहीं है, तो फिर बच ही क्या जाएगा? अतः ज़रूरी था कि ग्रहण सम्बंधी ज्ञान को आधे-अधूरे रूप में ही प्रसारित किया जाए। इस संदर्भ में अल् बेरूनी ने एक वाकया बयान किया है। यह दर्शाता है कि ज्योतिष का पूरा मामला ज्ञान के प्रसार पर नहीं वरन सोचे-समझे अप्रसार पर आधारित था।

अल् बेरूनी एक अध्येता थे जो दसवीं सदी के उत्तरार्द्ध और ग्यारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में भारत में रहे थे। उन्होंने अपनी किताब में तत्कालीन तथ्यों का काफी विस्तार में वर्णन किया है। वे बताते हैं कि उस समय भारतीय खगोल शास्त्री (वराह मिहिर और ब्रह्मगुप्त) भलीभांति जानते थे कि ग्रहण क्यों लगते हैं। वे यह भी जानते थे कि इसमें किसी राक्षस वगैरह की भूमिका नहीं है। वे यह गणना भी कर सकते थे कि ग्रहण कब लगेगा। मगर फिर भी वे यह बात जन सामान्य को बताते नहीं थे। वे फिर भी दान-पुण्य की बातें किया करते थे। आज भी हालत यह है कि सब कुछ जानते हुए भी ज्योतिषी लोग वही बातें दोहरा रहे हैं। आखिर क्यों?

मकर संक्रान्ति

समाज का एक बड़ा तबका मकर संक्रान्ति के दिन नदियों में स्नान करके, दान-दक्षिणा देकर पुण्य कमाने का प्रयास करता है। सभी ऐसा मानते हैं कि मकर संक्रान्ति 14 जनवरी के दिन ही होती है। वैसे साल-दर-साल बदलते त्योहारों के सामने मकर संक्रान्ति का हर साल एक ही दिन आना आश्चर्यजनक है। इसका कारण यह है कि मकर संक्रान्ति हिन्दुओं का एक मात्र ऐसा त्योहार है जो सूर्य की गति से निर्धारित होता है। मकर संक्रान्ति से आशय है कि आकाश में अपनी आभासी गति के दौरान जब सूर्य काल्पनिक मकर रेखा को छूकर उत्तर की ओर लौट चले यानी उत्तरायण हो जाए।

अलबत्ता, यह एक जाना-माना तथ्य है कि आजकल मकर संक्रान्ति 14 जनवरी को नहीं बल्कि 22-23 दिसंबर को होती है। मगर हमारे ज्योतिषियों ने न तो स्वयं गणना की है और न ही अन्य लोगों द्वारा की गई गणनाओं पर गौर करने की तकलीफ की है।

और ऐसी बात नहीं है कि संक्रान्ति के समय में परिवर्तन कोई गोपनीय रहस्य हो। और यह गोपनीय हो भी कैसे सकता है? आखिर सूर्य रोज़ निकलता है, सूर्योदय और सूर्यास्त का समय कोई भी नोट कर सकता है, दिन में पड़ने वाली छायाओं को कोई भी देख सकता है और जान सकता है कि कब सूर्य अपनी गति के ठेठ दक्षिण बिन्दु तक पहुंचा। कहने का मतलब यह है कि इस बात का अवलोकन कदापि मुश्किल नहीं है।

बहरहाल, इस तथ्य का खुद अवलोकन करना यदि बहुत मुश्किल हो, तो भी इसे जान लेना बहुत मुश्किल नहीं है। भारत सरकार ने मेघनाद साहा की अध्यक्षता में सन 1952 में एक कैलेंडर सुधार समिति गठित की थी जिसने

सभी ऐसा मानते हैं कि मकर संक्रान्ति 14 जनवरी के दिन ही होती है। मकर संक्रान्ति से आशय है कि आकाश में अपनी आभासी गति के दौरान जब सूर्य काल्पनिक मकर रेखा को छूकर उत्तर की ओर लौट चले यानी उत्तरायण हो जाए। अलबत्ता, यह एक जाना-माना तथ्य है कि आजकल मकर संक्रान्ति 14 जनवरी को नहीं बल्कि 22-23 दिसंबर को होती है।

अपनी रिपोर्ट 1955 में प्रस्तुत की थी। इस रिपोर्ट में मकर संक्रान्ति की तारीख में परिवर्तन का स्पष्ट उल्लेख है। दरअसल समिति ने सिफारिश की थी कि देर-सबेर इस नई तारीख को लागू कर दिया जाना चाहिए। मेघनाद साहा का परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी प्राचीनता से अनुराग रखने वालों के लिए यह बताया जा सकता है कि यह पहली बार नहीं था कि किसी ने यह बात कही हो। यह बात सबसे पहले 930 ईस्वीं में मुंजाल भट और उसके बाद 950 ईस्वीं में पृथुदक स्वामी कह चुके थे।

संक्रान्ति का इतिहास

वास्तविकता यह है कि ज्योतिष सिर्फ भारत की बात नहीं है। इस तरह के विचार कई संस्कृतियों में समय-समय पर उभरते रहे हैं। 1800 ईसा पूर्व से 800 ईसा पूर्व के बीच इस तरह के विचारों ने मेसोपोटेमिया में आकार लिया था। यह ग्रहों पर आधारित ज्योतिष का प्रथम प्रादुर्भाव था। यह 300 ईसा पूर्व के लगभग पूरी दुनिया पर छा गई थी। इस तरह के विचारों की सामाजिक उपयोगिता पर हम बाद में आएंगे। यहां इसका उल्लेख एक अलग कारण से किया जा रहा है।

प्राचीन काल में आकाश के अध्ययन का एक हेतु शायद ज्योतिष भी रहा था। ज्योतिष का पूरा कारोबार इस बात पर टिका है कि विभिन्न तारा मण्डलों में ग्रहों की स्थिति स्थिर है सदैव के लिए। जब यह खोज हुई कि तारा मण्डलों के सापेक्ष ये स्थितियां स्थिर नहीं रहतीं तो ज्योतिषियों ने तत्काल इसके परिणामों को पहचान लिया होगा। उस समय तक ग्रहों की स्थिति के (जन्म कुण्डली) के आधार पर व्यक्ति का भविष्य बताना एक सुसंगठित कारोबार बन चुका था। लिहाज़ा यह ज़रूरी हो गया कि सतत परिवर्तन की इस बात को नकारा जाए। और नकारा गया। सारे उपलब्ध ज्ञान को अनदेखा करके कहा गया कि संक्रान्ति की स्थिति दोलन करती है यानी कुछ समय तक तो संक्रान्ति देर से आएगी और फिर धीरे-धीरे सही समय पर आएगी, फिर जल्दी आने लगेगी। यह दोलन चलता रहेगा।

जब संक्रान्ति के दोलन का यह सिद्धांत प्रस्तावित किया गया था, शायद उस समय बहुत लंबे समय के आंकड़े उपलब्ध नहीं थे और यह सिद्धांत सही लग सकता था। मगर आज हमारे पास सैकड़ों वर्षों के अवलोकन उपलब्ध हैं और यह भलीभांति ज्ञात हो चुका है कि संक्रान्ति का समय किस तरह से बदलता है।

संक्रान्ति का महत्व एक विशेष कारण से है। यह वह समय है जब अपने आभासी पथ में सूर्य मकर रेखा पर होता है। इसी प्रकार से वे तिथियां भी महत्वपूर्ण हैं जब सूर्य कर्क रेखा पर होता है और भूमध्य रेखा पर होता है। साल में दो बार सूर्य भूमध्य रेखा पर होता है और इन तारीखों को दिन-रात बराबर होते हैं। प्रायः इन्हीं चार में से किसी स्थिति से नए वर्ष की शुरुआत होती है। अर्थात संक्रान्ति परिवर्तन का अर्थ है वर्ष के प्रारंभ की तिथि में परिवर्तन। इसका मतलब यह भी है कि वर्ष के प्रारंभ में आपने ग्रह नक्षत्रों की जो स्थितियां मानी थी वे वास्तव में वैसी नहीं थीं।

ज्ञान को नकारता 'विज्ञान'

उपरोक्त बातें सदियों पहले पता चल चुकी थीं। कोई भी वैज्ञानिक उपक्रम इन्हें सदियों पहले अपनी मुख्यधारा का अंग बना चुका होता। इसके कई उदाहरण आपको विज्ञान के इतिहास में मिल जाएंगे। मैं यहां भूकेन्द्रित और सूर्य केन्द्रित सौर मण्डल का रूढ़ उदाहरण नहीं दूंगा। एक अन्य उदाहरण भी उतना ही सशक्त है।

सत्रहवीं और अट्ठारवीं सदी में चीज़ों के जलने को लेकर फ्लॉजिस्टन का सिद्धांत प्रचलित था। इस सिद्धांत के मुताबिक जब चीज़ें जलती हैं तो उनमें से फ्लॉजिस्टन निकल भागता है। यह मत इतना हावी था कि जब धातुओं को जलाकर उनके ऑक्साइड बनाए जाते तो कहा जाता था कि धातु में से फ्लॉजिस्टन निकल गया है और भस्म प्राप्त हो गई है। यानी धातु को तो यौगिक माना जाता था, जबकि उनसे बने ऑक्साइड को शुद्ध तत्व! यह भ्रम काफी बरसों तक व्याप्त रहा। मगर लेवॉज़िए नामक एक वैज्ञानिक ने ऑक्सीजन की खोज के आधार पर तथा कई प्रयोग करके इस मिथक को ध्वस्त कर दिया। और जब यह मिथक ध्वस्त हुआ, तो नवीन अवधारणा विज्ञान का अंग बन गई। आगे के सारे अनुसंधान फ्लॉजिस्टन पर नहीं वरन ऑक्सीजन पर आधारित हुए।

रसायन में प्लॉजिस्टन मत इतना हावी था कि जब धातुओं को जलाकर उनके ऑक्साइड बनाए जाते तो कहा जाता था कि धातु में से फ्लॉजिस्टन निकल गया है और भस्म प्राप्त हो गई है। यानी धातु को तो यौगिक माना जाता था, जबकि उनसे बने ऑक्साइड को शुद्ध तत्व! यह भ्रम काफी बरसों तक व्याप्त रहा। मगर लेवॉज़िए नामक एक वैज्ञानिक ने ऑक्सीजन की खोज के आधार पर तथा कई प्रयोग करके इस मिथक को ध्वस्त कर दिया। और जब यह मिथक ध्वस्त हुआ, तो नवीन अवधारणा विज्ञान का अंग बन गई। आगे के सारे अनुसंधान फ्लॉजिस्टन पर नहीं वरन ऑक्सीजन पर आधारित हुए।

इसकी तुलना राहु-केतु से कीजिए। हर तरह से उनके भौतिक अस्तित्व को खारिज कर दिए जाने के बावजूद तथा ग्रहण की व्याख्या हो जाने के बावजूद, ज्योतिष अपनी उसी प्राचीन धारणा पर अड़ा हुआ है, उसी के आधार पर अपना कामकाज किए जा रहा है। यह कैसा विज्ञान है? दरअसल एक गैर-वैज्ञानिक परंपरा ही इस तरह का दुराग्रह रख सकती है कि हमें तो सदियों से सब कुछ मालूम है।

सवाल अधिकार का

किसी ने यह कहा है कि जो लोग ज्योतिष का अध्ययन करना चाहते हैं उन्हें यह अधिकार मिलना चाहिए। यह कथन भ्रांति पूर्ण है। यह अधिकार तो आज भी है। किसने मना किया है ज्योतिष का अध्ययन करने से? सवाल तो यह है कि क्या हमारे विश्वविद्यालय इस विषय को पढ़ाएं। इसके हिमायती और विरोधी दोनों मानेंगे कि यह प्रश्न आसान नहीं है। किसी विषय को पाठ्यक्रम में शामिल करने या न करने के निर्णय कई आधारों पर लिए जाते हैं। मैं उस विषय को फिलहाल नहीं छू रहा हूं।

ज्योतिष की भूमिका

यह तो मानना ही होगा कि ज्योतिष ने समाज में अहम भूमिका निभाई है। इस भूमिका के कई पहलू हैं। मैं यहां एक विशेष पहलू पर संक्षेप में चर्चा करूंगा। ज्योतिष की यह भूमिका काफी विरोधाभासी है। दरअसल एक समय में मुहूर्त आदि के निर्धारण हेतु. चन्द्र ग्रहण, सूर्य ग्रहण आदि के समय अग्रिम पता करने का महत्व था। जो लोग यह कर सकते थे उनका समाज में बहुत आदर होता था। इसके अलावा विभिन्न आकाशीय घटनाओं के प्रभावों आदि की भविष्यवाणी का भी काफी महत्व था। इन सबके लिए काफी सारे खगोल शास्त्रीय अध्ययन किए गए। विभिन्न आकाशीय पिंडों की गतियों का अध्ययन इसका हिस्सा था। इस तरह से ज्योतिष के तकाज़े ने खगोल अध्ययन की काफी प्रेरणा प्रदान की थी। अलबत्ता धीरे-धीरे ये दो धाराएं सर्वथा जुदा हो गईं। विडंबना यह है कि खगोल शास्त्र में जो अध्ययन होते रहे, उन्हें ज्योतिष नकारता रहा।

आज के समाज में भी ज्योतिष की एक अहम भूमिका है। यह भूमिका भी विरोधाभासी है। जिस समाज में तमाम समस्याएं हों, व्यक्ति और समाज इतना असहाय महसूस करता हो, अपने भविष्य के प्रति इतना अनिश्चित महसूस करता हो, वहां आशा की धुंधली सी किरण भी बहुत दिलासा देती है। ज्योतिष व कई अन्य विधाएं यह दिलासा देती हैं।

यह भी कहा जा रहा है कि यदि ज्योतिष को पाठ्यक्रम में लागू कर दिया जाए तो उसमें नए-नए शोध होकर वह एक विज्ञान बन जाएगा। यह बात गले नहीं उतरती। ज्योतिष एक ऐसे कारोबार से जुड़ा है जिसका पूरा दारोमदार ही रहस्यवाद और कुछ मान्यताओं को अचल मानने पर टिका है। निरंतर अवलोकन और अनुभवों के आधार पर आगे बढ़ना उसकी फितरत नहीं है। मात्र पाठ्यक्रम में जुड़ जाने से वह अपनी प्रकृति का त्याग करेगा, इसका कोई संकेत उसके इतिहास से नहीं मिलता। ***(स्रोत फीचर्स)***